IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

"योगतारावली" के अन्तर्गत योग विषय की उपलब्धता

डॉ० स्वर्णकला सिंह

Assistant Professor
Department of Yog and Health
Dev Sanskrit Vishwavidyalaya, Dehradun, Uttarakhand

शोध सारांश : *योगतारावली योग के दुर्लभ ग्रंथों की सूची में आता है। बहुत पहले इसका संपादन डॉ. राम शंकर भट्टाचार्य महोदय ने कराया था। इसके अन्तर्गत योग के कई महत्वपूर्ण पक्षों का सार-रूप में विवेचन हुआ है। प्रस्तुत ग्रंथ 29 श्लोकों में आबद्ध है, जिसमें हठयोग, राजयोग, योग निद्रा, नादानुसंधान आदि विषयों पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डाला है। आदि शंकराचार्य एवं नन्दिकेश्वर आदि की रचना को लेकर इस पर कई संशय उत्पन्न होते हैं, परन्तु लुप्तप्राय योग संस्कृति के साधना-मूलक सोपानों का इसमें संक्षिप्त उल्लेख, योग साधना कि जिज्ञासुओं के लिए एक आदर्श प्रस्तुति है।*

मुख्य शब्द : *योगतारावली, योग निद्रा, नादानुसंधान, बंध, राजयोग*

प्रस्तावना :

योगतारावली प्राच्य ग्रंथों की श्रृंखला में योग की भूमिका पर प्रकाश डालने वाली अनुपमेय कृति है। ग्रंथ के वास्तविक रचनाकार को लेकर अभी स्थिति संशयात्मक है। आदि शंकराचार्य इस ग्रंथ के मूल लेखक हैं अथवा नहीं इस पर संदेहास्पद स्थिति प्रकट करते हुए डॉ. राम शंकर भट्टाचार्य कहते हैं " 18 वीं शताब्दी के शाक्त भास्कर तथा 16-17 वीं शताब्दी के योगी शिवानन्द के द्वारा इस ग्रंथ के वाक्य उद्धृत हुए हैं। किंचिद शंकर सम्प्रदाय के किसी आचार्य के द्वारा अथवा हठयोगादि योग प्रस्थानों के किसी आचार्य के द्वारा इसकी शंकर कर्तृकता में दृढ़ संशय उत्पन्न करता है। इस ग्रंथ का एक वाक्य नन्दिकेश्वर कृत तारावली के नाम से भी उद्धृत किया गया है।"[1] इस प्रकार भट्टाचार्य के अनुसार इस ग्रंथ का रचयिता आचार्य शंकर को मानना संदेहास्पद है। द्वितीय मत में यदि इसे नन्दिकेश्वर कृत माना जाए तब भी संशय मूल की निवृत्ति नहीं होती है। गोपीनाथ कविराज[2] ने योगतारावली को आचार्य शंकर की कृतियों में स्थान दिया है, एवं टिप्पणी में उसी नाम से नन्दिकेश्वर कृत ग्रंथ का भी उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट है कि लेखक-द्वय द्वारा उपरोक्त

ग्रंथ एक ही शीर्षक से लिखा गया, परन्तु हमारे पास उपलब्ध ग्रंथ की समीक्षा अभी बाकी है। यहां हमारा विषय उसके लेखक की परीक्षा न करके उपलब्ध सामग्री में योग की भूमिका को स्पष्ट करना है।

नादानुसंधान :

ग्रंथ मूलतः 29 श्लोकों में आबद्ध है। स्वनाम विदित ग्रंथ का प्रतिपाद्य विषय योग है, जिसमें योग साधना की विभिन्न धाराओं पर सार रूप से प्रकाश डाला गया है। प्रथम श्लोक में गुरु-वन्दना[3] से शुरुआत की गयी है। अनन्तर नादानुसन्धान की जो चर्चा है, वह योगी स्वात्माराम कृत हठयोग प्रदीपिका में वर्णित नादानुसन्धान की व्याख्या से सारुप्य रखती है।

योग तारावली

सदाशिवोक्तानि सपादलक्षलयावधानानि वसन्ति लोके ।

नादानुसन्धानसमाधिमेकं मन्यामहे मान्यतमं लयानाम् ॥[4]

हठयोग प्रदीपिका

श्री-आदिनाथेन स-पाद-कोटि-लय-प्रकाराः कथिता जयन्ति ।

नादानुसन्धानकमेकमेव मन्यामहे मुख्यतमं लयानाम् ॥[5]

उपर्युक्त श्लोक की अन्तिम दो पंक्तियां हठयोग प्रदीपिका से उद्धृत श्लोक से बहुत कुछ समानता प्रदर्शित कर रही है। पूर्वापर हम कह सकते हैं कि दोनों ग्रंथ उक्त सन्दर्भ में एक दूसरे से प्रेरित हो सकते हैं। दूसरे से लेकर चौथे श्लोक तक इसमें नादानुसन्धान को लेकर चर्चा है।

सदाशिव के कहें हुए, लय के सवा लाख साधन लोक में हैं, परन्तु उन सब में नादानुसन्धान नामक समाधि ही लय का श्रेष्ठम साधन है। पूरक, रेचक और कुम्भक के अभ्यास से जब सभी नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं, तब अनेक प्रकारों से सदा ही अनाहत नाद सुनाई पड़ने लगता है । हे नादानुसन्धान | तुझको मेरा बार बार नमस्कार हो, क्योंकि तुम परमपद की प्राप्ति का एक उत्तम साधन हो। तेरा अनुग्रह होने पर मेरा मन प्राण को भी अपने साथ लेकर विष्णुपद में लीन हो जाता है ।[6]

बंध :

इसके अनन्तर ग्रन्थकार हठयोग विद्या में प्रतिपाद्य त्रिबन्धों पर सार-रूप से प्रकाश डालता है। इनका वर्णन करते समय इन्हें कण्ठ, उदर और पायुमूल पर यथाक्रम जालन्धर बंध, ओड्ड्यानबंध (उड्डियान बंध) एवं मूलबन्ध के रूप में बताया है। विभिन्न योग शास्त्रों में इन तीन प्रकार के बंधों का वर्णन प्राप्त होता है, जिसमें हठयोग प्रदीपिका[7] एवं घेरण्ड संहिता[8] आदि ग्रन्थ द्रष्टव्य है। योगतारावली के अनुसार "जालंधर, उड्डियान तथा मूलबंध यह तीनों बंध क्रम से कण्ठ, उदर तथा गुदा के मूल में होते हैं, इन तीनों बंधों के सिद्ध हो जाने पर दारुण कालपाश तक का बंधन नहीं रह जाता।

तीनों बंधों के अभ्यास से कुंडलिनी जागृत होती है, तथा प्राण ऊर्धमुख हो सुषुम्ना में प्रवेश कर जाते हैं। इन तीनों बंधों के अभ्यास के परिपक्व होने पर विषय रूपी नदी के झरने सूख जाते हैं, और केवल कुम्भक नाम की विद्या की प्रमुख रहती है, जबकि पूरक और रेचक की अवस्थाएं पूरी तरह से वर्जित हो जाती हैं।"[9]

यहाँ पर ग्रंथकार के द्वारा त्रिबन्धों से उत्पन्न केवल कुम्भक की प्रशंसा की गयी है[10], जिसका वर्णन हठयोग प्रदीपिका[11] एवं घेरण्ड संहिता[12] में विशेष रूप से दिया गया है। वहीं केवल कुम्भक की अवस्था में पूरक और रेचक की वर्जना के विषय पर योगतारावली और हठयोग प्रदीपिका के ग्रंथकार एक समान मत रखते हैं, यथा –

हठयोग प्रदीपिका

प्राणायामोऽयमित्युक्तः स वै केवल-कुम्भकः ।

कुम्भके केवले सिद्धे रेच-पूरक-वर्जिते ॥[13]

योग तारावली

बन्धत्रयाभ्यासविपाकजातां विवर्जितां रेचकपूरकाभ्याम् ।

विशोषयन्तीं विषयप्रवाहं विद्यां भजे केवलकुम्भरूपाम् ॥[14]

राजयोग :

योगतारावली में राजयोग के विषय पर भी चर्चा प्राप्त होती है, यथा - "जब राजयोग का उदय होता है, तो साधक को न तो दृष्टि के कोई विशेष लक्ष्य ही रखने पड़ते हैं, न चित्त को ही रोकना पड़ता है, न देश काल की अनुकूलता को ही जानना पड़ता है, न प्राणायाम की ही आवश्यकता रह जाती है, और न धारणा या ध्यान का ही परिश्रम करना शेष रह जाता है। जो साधक इस राजयोग में तन्मय हो जाते हैं उनको ऐसी विचित्र अवस्था प्राप्त होती है, कि फिर जाग्रत और सुषुप्ति तथा जीवन और मरण जैसी अवस्थाएं भी शेष नहीं रह जाती। राजयोग में स्थिर साधक ममता आदि को त्याग तथा दृष्टा और दृश्य के भाव को भी त्याग कर मात्र संवित रूप से प्रकाशित होता है।"[15]

हठयोग प्रदीपिका में स्वात्माराम भी राजयोग को हठयोग के अंतिम लक्ष्य तथा हठयोग और राजयोग को एक दूसरे का पूरक घोषित करते है।[16] वहीं घेरण्ड संहिता का ग्रन्थकार राजयोग को मुक्ति का लक्षण घोषित करता है।[17] राजयोग की पूर्णता से प्राप्त उन्मनी भाव का सुन्दर चित्रण करते हुए योग तारावली में बताया गया है कि -

नेत्रे ययोन्मेषनिमेषशून्ये वायुर्यया वर्जितरेचपूरः ।

मनश्च सङ्कल्पविकल्पशून्यं मनोन्मनी सा मयि सन्निधत्ताम् ॥[18]

अर्थात् जिस मनोन्मनी अवस्था के द्वारा दोनों नेत्र उन्मेष-निमेष हीन हो जाते हैं, रेचक और पूरक रूप वायु स्तब्ध हो जाता है, तथा मन भी संकल्प एवं विकल्प से रहित हो जाता है वह (उन्मनी भाव) मुझमें आविर्भूत हो।

मनोन्मनी अवस्था का विवरण हठयोग प्रदीपिका[19] में भी मिलता है। हठयोग ग्रन्थों के अनुसार प्राणवायु का सुषुम्ना मध्य में संचार होने पर मन का सम्यक् स्थैर्य होता है। मन का उन्मन होना अर्थात मन के द्वारा विषय मनन न होना। इसके लिए कभी-कभी "उन्मनी" शब्द का प्रयोग भी होता है, जिसे "तुर्यावस्था" भी कहते हैं। इसके विस्तृत विवरण के लिए हठयोग प्रदीपिका ज्योत्स्नाटीका[20] तथा उत्तरगीता[21] आदि दृष्टव्य हैं ।

योगनिद्रा :

योगतारावली में "योगनिद्रा" के विषय में विशेष चर्चा मिलती है। विषयासक्ति के नाश होने के बाद जड़विहीन योगनिद्रा की उत्पत्ति बतायी है।[22] योगनिद्रा की स्थिति विकल्प हीन है। अर्थात् आत्म विषयक कोई भी भ्रान्त धारणा इस अवस्था में नहीं रहती है। इसकी तुलना तुरीय तत्त्व से की गयी है।

समाधि :

ग्रन्थ समाप्ति के अंतिम श्लोकों में समाधि के अद्भुत ऐश्वर्य का वर्णन करते हुए योगतारावली कहती है - "समाधि में मेरा मन कब ऐसा विलीन होगा, जब मैं श्रीशैल पर्वत के शिखरों की गुफाओं में बैठ पाऊँगा?, और जब लताएँ मेरे शरीर को घेर लें, जब पक्षी मेरे कर्ण विवरों में अपना घोंसला बना लें, कब ऐसी अवस्था मुझे प्राप्त होगी?"[23]

हठयोग प्रदीपिका इसी अवस्था पर विचार करते हुए कहती है - "काष्ठवज्जायते देह"[24] अर्थात देह काष्ठवत हो जाती है। वहीं घेरण्ड सहिंता के अनुसार - "स्वदेहे.....निर्ममो भूत्वा"[25] अर्थात स्वदेह में भी ममता का नाश हो जाता है।

इस प्रकार योग के कतिपय परन्तु अत्यन्त गहन और महत्त्वपूर्ण पक्षों पर विचार करते हुए ग्रन्थकार योग साधना की श्रेष्ठता को सर्वोपरि मानता है। यह एक सार-रूप ही, किन्तु अनुपमेय व्याख्यान है। योग-साधना के जिज्ञासुओं के लिए योगतारावली एक आदर्श प्रस्तुति है।

---

[1] भट्टाचार्य, डॉ. राम शंकर, योग तारावली, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी-01 (1987), पृ. 2

[2] कविराज, म.म. डॉ. गोपीनाथ, भारतीय साधना की धारा, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना (1984), पृ. 164

[3] वन्दे गुरूणां चरणारविन्दे सन्दर्शितस्वात्मसुखावबोधे।जनस्य ये जाड्गलिकायमाने संसारहालाहलमोहशान्त्यै ॥ योग तारावली : 1

[4] योग तारावली : 2

[5] हठयोगप्रदीपिका : 4/66

[6] योग तारावली : 2-4

[7] हठयोग प्रदीपिका: उड्डियान बंध 3/55 – 60, मूलबंध 3/61-69, जालंधर बंध 3/70-77,

[8] घेरण्ड संहिता : मूलबंध 3/6-9, जालंधर बंध 3/10-11, उड्डियान बंध 3/12-13

[9] योग तारावली : 6-8

[10] योग तारावली : 10

[11] हठयोग प्रदीपिका: 1/43, 2/72-73

[12] घेरण्ड संहिता : 5/86-98

[13] हठयोग प्रदीपिका: 2/73

[14] योग तारावली : 8

[15] योग तारावली : 14-16

[16] हठयोग प्रदीपिका: 1/1, 2/76-77

[17] घेरण्ड संहिता : 7/17

[18] योग तारावली : 17

[19] हठयोग प्रदीपिका : 2.42.,4.20

[20] हठयोग प्रदीपिका ज्योत्स्नाटीका : 4.64,4.80-104, 106

[21] उत्तरगीता : 2.49

[22] योग तारावली : 25

[23] योग तारावली : 28

[24] हठयोग प्रदीपिका: 4/106

[25] घेरण्ड संहिता : 7/21